जैन और वैदिक परम्परा में वनस्पतिविचार

(इन्द्रियों के सन्दर्भ में)

डॉ. कौमुदी बलदोटा*

प्रस्तावना :

दैनंदिन व्यवहार में वनस्पतियों का उपयोग तथा उनसे वर्तनव्यवहार के बारे में जैन और वैदिक परम्परा में काफी अन्तर दिखाई देता है । रसोई की जैन पद्धति में हरा धनिया, हरी मिर्च, हरी मीठीनीम, ताजा नारियल आदि का उपयोग बहुत कम हैं । सूखे मसाले ज्यादातर पसंद किया जाते हैं । धार्मिक मान्यताएँ ध्यान में रखकर सब्जियाँ चुनी जातीं हैं । आलू, रतालू आदि कन्दों का इस्तेमाल निषिद्ध माना जाता है । आज की हिन्दु जीवनपद्धति में आलू-रतालू आदि उपवास के दिन खासकर उपयोग में लाये जाते हैं। प्राचीन काल में अरण्यवासी ऋषिमुनि कन्दमूल, पत्ते, फल आदि का उपयोग आहार में करते थे, ऐसे सन्दर्भ साहित्य में उपलब्ध हैं । हिन्दू पौराणिक पूजा पद्धति में ताजे फूल और पत्ते ज्यादा मायने रखते हैं । विष्णु, शिव, देवी, गणपति आदि देवताओं को विशिष्ट रंग के तथा सुगन्ध के फूल तथा पत्ते चढाए जाते हैं । ताजा नारियल फोडकर चढाया जाता है । श्वेताम्बर मन्दिरमार्गीयों के सिवाय किसी भी जैन सम्प्रदाय की पूजा तथा आराधना पद्धति में ताजा फूल-पत्ते तथा नारियल का इस्तेमाल नहीं होता । नारियल अगर चढावें तो फोडे नहीं जाते । दिगम्बर सम्प्रदाय में तो सूखे नारियल और सूखा मेवा (काजू, बादाम आदि) चढाने का प्रावधान है । बगीचे, उद्यान आदि बनाना, पेडों की ऋतु के अनुसार कटाई आदि करना, बेल-तुलसी-हरी पत्ती चाय, ताजा अदरक, बकुल के फूल आदि उबालकर काढा (कषाय) बनाकर रोगों का इलाज करना आदि सैंकडों बातें हिन्दु जीवनपद्धति में बिलकुल आम हैं । तुलसी, वड, पीपल, औदुम्बर आदि वृक्ष धार्मिक दृष्टि से पवित्र मानकर पूजा जाते हैं । जैन जीवनपद्धति में किसी भी व्रत या त्यौहारों में वृक्षों की पूजा नहीं की जाती ।

* सन्मति-तीर्थ, फिरोदिया होस्टेल, ८४४, शिवाजीनगर, बी.एम.सी.सी. रोड, पुणे-४११००४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय (व्याप्ति तथा मर्यादा) :

दोनों परम्पराओं में वनस्पतियों के बारे में इतना अलग-अलग व्यवहार और मान्यताएँ क्यों हैं ? तत्त्वप्रधान तथा आचारप्रधान ग्रन्थों में इसका रहस्य निहित है । इस शोधनिबन्ध में वनस्पति की सजीवता तथा वनस्पति में इन्द्रियों की उपस्थिति इन मुद्दों को ध्यान में रखकर छानबीन की गयी है । जैनियों के प्राचीन ग्रन्थ प्राकृत में होने के कारण तथा प्राकृत की विद्यार्थिनी होने के नाते मुख्यत: आचारांग, सूत्रकृतांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, प्रज्ञापना, जीवाजीवाभिगम और त्रिलोकप्रज्ञप्ति, मूलाचार एवं गोम्मटसार (जीवकाण्ड) ये शौरसेनी ग्रन्थ वनस्पतिविवेचन के बारे में आधारभूत मानकर विश्लेषण का प्रयास किया है ।

वैदिक परम्परा के दर्शन ग्रन्थों में केवल सांख्य-दर्शन में वनस्पति विचार है । वह भी अत्यल्प मात्रा में है । चारों वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों में वनस्पति और औषधियों का जिक्र तो किया है लेकिन तात्त्विक विश्लेषण बहुत कम है । उपनिषदों में दिया हुआ सृष्टि के आविर्भाव का क्रम काफी लक्षणीय है । वनस्पति की स-इन्द्रियता और निरिन्द्रियता की चर्चा महाभारत के शान्तिपर्व के एक संवाद में काफी हद तक की गई है। चरकसंहिता में वनस्पतियों का वर्गीकरण, नाम तथा गुणधर्म विस्तार से दिये हैं, औषधियाँ बनाने की प्रक्रियाएँ भी विपुल मात्रा में दी हैं, लेकिन उनकी सजीवता, इन्द्रियाँ होना या न होना इनका जिक्र बिलकुल ही नहीं है । निघण्टु तो वनस्पतिसूचि है ।

इस निबन्ध को वैज्ञानिक मूल्य प्राप्त कराने हेतु विशेष प्रयास किये हैं । वनस्पतिशास्त्र के प्राध्यापकों से इस विषय की विस्तृत चर्चा की है। बॉटनी तथा इकॉलॉजी के ग्रन्थों की नामावली सन्दर्भग्रन्थसूचि में दी है ।

(१) वनस्पति की उत्पत्ति-

वैदिकों ने सृष्टि की उत्पत्ति का विशिष्ट क्रम स्वीकार किया है । 'आत्मन: आकाश: सम्भूत: । आकाशाद्वायु: । वायोरग्नि: । अग्नेराप: । अद्भ्य: पृथिवी । पृथिव्या ओषधय: । ओषधीभ्य: अन्नं । अन्नात् पुरुष: ।[१] यह क्रम

१. तैत्तिरीय उपनिषद् २.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राय: वैज्ञानिक मान्यता से मेल खाता है । फर्क केवल इतना ही है कि आकाश की उत्पत्ति आत्मा परमात्मा और परमेश्वर से जोडना विज्ञान को मंजूर नहीं। ये पाँच महाभूत हैं और वे जड हैं ।

जैन दृष्टि से लोक जीव एवं अजीव इन दो (राशि) द्रव्यों से व्याप्त है ।[२] इनमें से जीवद्रव्य के इन्द्रियानुसारी पाँच भेद हैं । उनमें एकेन्द्रिय जीव पाँच हैं । जैसे कि पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजसकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ।[३] सूत्रकृतांग में कहा है कि पानी, हवा, आकाश, काल और बीज का संयोग होने पर ही वनस्पति की उत्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं ।[४] यह मत भी वैज्ञानिक दृष्टि से उचित है । लेकिन इन सबको एकेन्द्रिय कहना और स्वतन्त्र जाति मानना जैनदर्शन की विशेषता है । पाँचों एकेन्द्रिय की उत्पत्ति एक दूसरे से नहीं हुई है । जगत् परिवर्तनशील है और अनादिनिधन है ।[५] इसका मतलब यह हुआ कि ये पाँचों एकेन्द्रिय पहले से ही सृष्टि में मौजूद हैं ।

(२) वनस्पति की योनि (उत्पत्तिस्थान) -

दोनों परम्परायें योनिसंख्या ८४ लक्ष मानती हैं । इनमें वनस्पति की योनियाँ मान्यतानुसार २४ लक्ष और वैदिक मान्यतानुसार २१ लक्ष हैं ।[६] वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह संख्या वस्तुस्थिति के बहुत ही नजदीक है । वर्गीकरण के आधुनिक निकष अनुपलब्ध होने पर भी लगभग ३००० वर्ष पहले यह संख्या कथन करना एक आश्चर्यकारक बात ही है ।

(३) स्थान :

जैन मान्यता के अनुसार वनस्पतिसृष्टि तीनों लोकों में हैं ।[७] सांख्य-दर्शन की मान्यतानुसार अधोलोक में वनस्पतिसृष्टि है ।[८] लेकिन पौराणिक

---

२. भगवती शतक २५, उद्देशक २, सूत्र १; त्रिलोकप्रज्ञप्ति १.१३३
३. अणुयोगद्वार सूत्र २१६ (५,६)
४. सूत्रकृतांग २.३.२
५. तत्त्वार्थसूत्र ५.२ की टीका
६. भारतीय संस्कृति कोश
७. उत्तराध्ययन ३६.१०० ८. सांख्यकारिका ५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान्यतानुसार वनस्पति तीनों लोकों में है । आज उपलब्ध ज्ञान के आधारपर वैज्ञानिकों ने उनका अस्तित्व केवल पृथ्वी पर ही होने के संकेत दिये हैं। क्योंकि पानी के आधार पर ही वनस्पति सृष्टि उत्पन्न होती है और पानी केवल पृथ्वी पर ही है ।

दोनों परम्पराओं ने वनस्पति का समावेश तिर्यंचगति[९] या तिर्यंचयोनि[१०] में किया हैं । और उनका स्थावरत्व[११] भी मान्य किया है ।

(४) वनस्पति में जीवत्व :

जैन मान्यतानुसार वनस्पति जीवद्रव्य है ।[१२] वनस्पतिकायिक सुप्त चेतनावाले है किन्तु जागृत नहीं हैं और सुप्त जागृत भी नहीं हैं ।[१३] स्त्यानगृद्धि निद्रा के सतत उदय से वनस्पतिकायिक जीवों की चेतना बाहरी रूप में मूर्च्छित होती है ।[१४] वनस्पति का मूल जीव एक है और वह वनस्पति के पूरे शरीर में व्याप्त है लेकिन वनस्पति के सभी अवयवों में भी अलग-अलग जीवों का होना मान्य किया है ।[१५]

वैदिकों के अनुसार वनस्पति सजीव सृष्टि का एक अचर प्रकार हैं। 'उच्चनीच' की दृष्टि से किये हुये सृष्ट पदार्थों की वर्गवारी में उन्हें प्राणियों से नीच माना है ।[१६] सांख्यकारिका में भौतिक सर्ग का कथन करते हुए कहा है कि देवयोनि का सर्ग आठ प्रकार का है । तिर्यंच योनि का सर्ग पाँच प्रकार का है अर्थात् गाय, भैंस आदि पशु, हरिण इत्यादि मृग, पक्षी, सर्प और वृक्षादि स्थावर पदार्थ । और मनुष्यसर्ग एक प्रकार का है ।[१७] वैज्ञानिक दृष्टि से सृष्टिव्युत्पत्ति के क्रम में पहली सजीव-निर्मिती वनस्पति

---

९. अणुयोगद्वार सूत्र २१६(३)
१०. सांख्यकारिका ५३
११. सांख्यकारिका ५३ का प्रकाश; उत्तराध्ययन ३६.६९
१२. उत्तराध्ययन ३६.६९
१३. भगवती १६.६.३-८
१४. भगवती १९.३५ की टीका
१५. सूत्रकृतांग २.७-८; उत्तराध्ययन ३६.९३
१६. भारतीय संस्कृतिकोश
१७. सांख्यकारिका ५३

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ही है । उत्क्रान्ति से विकसित सभी सजीव सृष्टि की वह आधारभूत संस्था है । वनस्पतियों में जो जीवशक्ति है उसके आधार पर ही क्रम से प्रगत जीवसृष्टि की निर्मिती हुई है । वनस्पतियों ने भी काल तथा परिस्थिति के अनुसार समायोजन करके खुद में परिवर्तन किये हैं । जैन दृष्टि में प्रत्येक द्रव्य, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार हमेशा परिणमित होता रहता है ।[१८]

जैन मान्यतानुसार वनस्पति का मूल जीव एक है और वह वनस्पति के पूरे शरीर में व्याप्त है । अन्य ग्रन्थों में यह भी कहा है कि वनस्पति के विभिन्न अवयवों में अलग-अलग विभिन्न प्रकार के जीव होते हैं । वैज्ञानिक दृष्टि से इसकी उपपत्ति इस प्रकार दी जा सकती है । वनस्पति शास्त्रानुसार वनस्पति के अवयवों में भिन्न भिन्न प्रकार की पेशियाँ होती हैं। लेकिन उनका डीएन्ए समान होता है । वृक्ष के किसी भी अवयव की पेशी का डीएनए देखकर हम पूरे वृक्ष का पता लगा सकते हैं ।पेशियों का अलग-अलग अस्तित्व होकर भी उनमें जो साम्य है वह ध्यान में रखकर जैन ग्रन्थों में एक मूल जीव और बाकी असंख्यात जीवों की बात कही गई होगी । अर्थात् विज्ञान ने भी सम्पूर्ण वनस्पतिशास्त्र में एक जीव की संकल्पना नहीं की है ।

(५) वनस्पति में वेद (लिङ्ग) -

वैदिकोंने वनस्पतियों को 'उद्भिज्ज' कहा है ।[१९] कठोपनिषद् के अनुसार कुछ उच्च जाति की वनस्पतियों की जननक्रिया प्राणियों की जननक्रिया से मेल खाती है ।[२०] वनस्पति के प्रजनन का विचार मुण्डक, छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में किया हुआ है । हारितसंहिता तथा चरकसंहिता के अनुसार वनस्पति में लिङ्गभेद है तथा वंशवृद्धि के लिए नरमादासंगम आवश्यक है ।[२१] सपुष्प और अपुष्प वनस्पतियों की पुनरुत्पत्ति का तरीका अलग-अलग होने का स्पष्ट संकेत इससे पाया जाता है । वैज्ञानिक

---

१८. तत्त्वार्थसूत्र ५.४१
१९. वैशेषिकसूत्र ४.२.५
२०. कठोपनिषद् १.१.६
२१. भारतीयसंस्कृतिकोश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि से भी यह वर्णन ठीक है क्योंकि वनस्पतिशास्त्र के अनुसार पपीता जैसे कुछ वृक्षों में नर या मादा वृक्ष अलग-अलग भी होते हैं और वृक्ष के फूल में भी नरबीज या मादाबीज उपस्थित होते हैं। अपुष्प वनस्पति में पुनरुत्पत्ति के अलग-अलग प्रकार विज्ञान ने बताए हैं।

जैन मान्यतानुसार सभी वनस्पतियाँ सम्मूर्छिम हैं।[२२] और सभी वनस्पतियाँ नपुंसकवेदवाली हैं।[२३] दशवैकालिक में वनस्पति की पुनरुत्पत्ति के प्रकार अलग-अलग बतलाये हैं।[२४] फिर भी उन्हें सामान्य रूप से नपुंसकवेदी माना है। यह संकल्पना वैज्ञानिक दृष्टि से मेल नहीं खाती।

(६) वनस्पति में इन्द्रियाँ :

जैन दृष्टि से एकेन्द्रिय सृष्टि पाँच प्रकार की है। पृथ्वीकायिक, तेजसकायिक, अपकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक। इन पाँचों को 'स्पर्शनेन्द्रिय' है। वनस्पतिजीव अन्य चार एकेन्द्रिय जीवों पर निर्भर है।[२५] जैन शब्दावली में उनको वनस्पतिकायिक जीवों का आहार कहा है।[२६]

स्पर्शनेन्द्रिय से जितना ज्ञान पा सकते हैं उतना ही ज्ञान उनमें हैं।[२७] जीव के एकेन्द्रिय आदि पाँच भेद किये गये हैं, सो द्रव्येन्द्रिय के आधार पर क्योंकि भावेन्द्रियाँ तो सभी संसारी जीवों को पाँचों होती है।[२८] बाकी के इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान होने का स्पष्ट निर्देश यहाँ नहीं है। तथापि श्रोत्रभावेन्द्रिय होने का जिक्र कुछ अभ्यासकों ने किया है।[२९] वनस्पति के मन के बारे में जैन मान्यता यह है वह अमनस्क (असंज्ञी) है।[३०]

आचारांग अर सूत्रकृतांग के पहले श्रुतस्कन्ध में वनस्पति की तुलना

---

२२. तत्त्वार्थसूत्र २.३६
२३. भगवती ७.८.२; तत्त्वार्थसूत्र २, ५०
२४. दशवैकालिकसूत्र. ४.८
२५. सूत्रकृतांग २.३.२
२६. सूत्रकृतांग २.३.२-५
२७. भगवती ७.८.५
२८. विशेषावश्यक २९९९, ३००१; दर्शन और चिन्तन पृ. ३००
२९. दर्शन और चिन्तन, पृ. ३०८
३०. तत्त्वार्थसूत्र २.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य शरीर से, मनुष्य की शारीरिक अवस्था से और मनुष्य की मानसिक संवेदनासे विस्तारपूर्वक की है।[३१] दोनों ग्रन्थों में की हुई इस तुलना से यह प्रतीत होता है कि वनस्पति में पाँचों इन्द्रियाँ होने का अनुभव उन्होंने इसमें ग्रथित किया है। पंचेन्द्रिय की तरह वनस्पति में सिर्फ 'रस' धातु के सिवाय रक्त, मांस आदि छह धातु न होने से उसकी गणना 'एकेन्द्रिय' में की है।[३२]

वैदिक साहित्य में वनस्पति की इन्द्रियों की चर्चा विस्तृत रूप से सिर्फ महाभारत के शान्तिपर्व में दिखाई देती है। महाभारत के शान्तिपर्व में भृगु मुनि तथा भारद्वाज के संवाद से वृक्षों के पाँचभौतिक तथा इन्द्रियसहित न होने की और होने की चर्चा विस्तार से पाई जाती है। भारद्वाज मुनि के कथन का सारांश यह है कि वृक्ष में द्रव, अग्नि, भूमि का अंश, वायु का अस्तित्व तथा आकाश नहीं है। इसलिए वे पाँचभौतिक नहीं है। भृगुमुनि को यह दृष्टिकोण बिलकुल मान्य नहीं है। उन्होंने बडे विस्तार से वृक्षसम्बन्धी बातें कहीं हैं। 'वृक्ष घनस्वरूप है यह सच है लेकिन उसमें आकाश का अस्तित्व होता भी है। उसके पुष्प और फल क्रमक्रमसे दिखाई देते हैं इसलिए वे 'चेतन' भी हैं और 'पाँचभौतिक' भी हैं।

उष्णता से वृक्ष का वर्ण म्लान होता है। छाल सूख जाती है। फल और फूल पक्व और जीर्ण होकर गिरते हैं इसलिए उन्हें 'स्पर्शसंवेदना' है। जोर की हवा की ध्वनि, से वडवाग्नि तथा वज्रपात की ध्वनि से, वृक्षों के फल और फूल गिर जाते हैं। ध्वनिसंवेदना तो श्रोत्रेन्द्रिय को होती है। इसलिए वृक्षों को 'श्रवणेन्द्रिय' है। लता वृक्ष को वेष्टित करती है, वृक्ष पर फैल जाती है। आदमी को भी अगर दृष्टि नहीं होती तो वह उचित मार्ग से जा नहीं सकता था, इसलिए वृक्ष 'देख' भी सकता है। सुगन्ध वा दुर्गन्ध से तथा धूप आदि से वृक्ष रोगरहित होते हैं और उनमें फूलफलों की बहार आ जाती है। इसलिए उन्हें 'घ्राणेन्द्रिय' भी है। वृक्ष अपने मूलों के द्वारा जल का शोषण करते है। वे रोगग्रस्त भी होता हैं। इतना ही नहीं, उनमें रोग के प्रतिकार का सामर्थ्य भी हैं। इसलिए वृक्ष को 'रसनेन्द्रिय' है।

---

३१. आचारांग १.१.१०४; सूत्रकृतांग २.७.८; सूत्रकृतांग टीका पृ. १५७ बी. १०
३२. सूत्रकृतांग २.६.३५ का टिप्पण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृक्ष को सुख और दुःख की संवेदना होती है । कटा हुआ वृक्ष फिर जोर से फूटता है । इसलिए वृक्ष में 'जीव' है, वे अचेतन नहीं, 'सचेतन' ही हैं । वृक्ष ने भूमि से शोषण किये हुये जल का, उष्णता और वायु की मदद से पचन होता है । यह जलाहार उसमें स्निग्धता का निर्माण करता है और उसकी वृद्धि भी करता है ।[३३] मूल प्रकृति में अहंकार से भिन्न-भिन्न पदार्थ बनने की शक्ति प्राप्त होने पर विकास की दो शाखायें होती हैं । एक-वृक्ष, मनुष्य आदि सेन्द्रिय प्राणियों की दृष्टि और निरिन्द्रिय पदार्थ की सृष्टि ।[३४]

वैज्ञानिक दृष्टि से वनस्पति सजीव है । इन्द्रियधारी जीवों की तरह उनमें स्पष्ट रूप से एक भी इन्द्रिय मौजूद नहीं है । लेकिन सभी इन्द्रियों के कार्य वनस्पति अपनी त्वचा के माध्यम से ही करती है । इस दृष्टि से देखें तो उन्हें 'स्पर्शनेन्द्रिय' है ऐसा माना जा सकता है । उनको दूसरों के अस्तित्व की संवेदना त्वचा से ही होती है । रसनेन्द्रिय का काम रस का ग्रहण है और वनस्पति में स्पष्ट मात्रा से मूल और उपमूलों के द्वारा होता है । फिर भी श्वासोच्छ्वास, अन्य निर्मिती आदि रूप से पत्ता, तना आदि भी इस रस के ग्रहण की प्रक्रिया में शामिल होते हैं । इस प्रकार यह कार्य भी त्वचा से निगडित है । उनमें गन्ध की संवेदना होने का प्रयोग वैज्ञानिक रूप से अभी उपलब्ध नहीं है । अस्तित्व की संवेदना तो उन्हें होती है । आसपास के सजीव, निर्जीव सृष्टि के रंगरूप की संवेदना के बारे में कहा नहीं जा सकता । लेकिन रंगरूप के विशेष ज्ञान के लिए जो विशेष ज्ञानशक्ति आवश्यक है उस तरह का विकास उनमें नहीं है ! क्योंकि उनमें संवेदना करानेवाली मज्जासंस्था या भेजा मौजूद नहीं है । सुमधुर गायन इत्यादि का अनुकूल परिणाम वनस्पतियों पर होता है । इस विषय का संशोधन किया गया है, फिर भी ध्वनि की लहरें, कम्पन के द्वारा उनकी त्वचा से स्पर्श करती हैं और उन्हें ध्वनिसंवेदना होती है । अलग श्रवणेन्द्रिय की कोई गुंजाईश नहीं है ।

साम्य के आधार से कहा जाय तो फूलवाली वनस्पतियों का

३३. महाभारत, शान्तिपर्व (मोक्षधर्मपर्व) अध्याय १८४, ६-१८

३४. गीतारहस्य पृ. १०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जननेन्द्रिय 'फूल' है । श्वासोच्छ्वास का इन्द्रिय 'पत्ता' है । उत्सर्जन क्रिया हर वनस्पति में परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग होती है । वह पत्ते, तना और मूल सभी अवयवों के द्वारा होती है । जो-जो भी इन्द्रिय संवेदनायें वनस्पति में पायी जाती हैं, उनके पीछे विचारशक्ति, मन अथवा मज्जासंस्था नहीं होती । वनस्पति जो-जो संवेदनात्मक प्रतिक्रियायें देती हैं वे सिर्फ रासायनिक या संप्रेरकात्मक प्रक्रियायें हैं । मनुष्य में ऐच्छिक क्रियायें और प्रतिक्षिप्त क्रियायें दोनों होती हैं । ऐच्छिक क्रियाओं के लिए विचारशक्ति की आवश्यकता नहीं होती है । जैसे कि किसी भी आगात से पलकों का झपकना । इस क्रिया के पीछे कोई भी विचारशक्ति नहीं है, उसी प्रकार छूई-मूई (mimosa pudica) आदि वनस्पतियों में इस प्रकार की क्रियायें प्रतिक्षिप्त क्रियायें हैं ।

व्याख्याप्राप्ति में कहा है कि वनस्पतिजीव को समयादि का ज्ञान नहीं होता ।[३५] आपाततः तो लगता है कि यह संकल्पना गलत है क्योंकि सूरजमुखी का सूरत की तरफ झुकना, रजनीगन्धा का रात में फूलना, दिन में या रात में कमलों का विकसित होना, विशिष्ट ऋतु में वनस्पति में फूलों-फलों की बहार आना आदि घटनायें देखकर ऐसा लगता है कि समय के अनुसार वनस्पति प्रतिक्रियायें देती रहती है । लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से ये सिर्फ रासायनिक संप्रेरकात्मक घटनायें हैं । इसमें जानबूझकर करने की कोई बात नहीं उठती । इसीलिए एक प्रकार से कहा भी जा सकता है कि उनमें समय का ज्ञान नहीं है । समयानुसारी वर्तन तो उनमें मौजूद है पर वह ज्ञानपूर्वक नहीं है ।

वैदिक साहित्य में काव्य, नाटक आदि में वनस्पति ऋतु के अनुसार पुष्पति-फलित होना, कमलों के विविध प्रकार आदि के उल्लेख विपुल मात्रा में पाये जाते हैं । लेकिन दार्शनिक ग्रन्थों में इसका विचार स्वतन्त्र रूप से नहीं किया है ।

वनस्पति का आहार में प्रयोग -

जैन प्राकृत ग्रन्थों में वनस्पति द्वारा किया जानेवाला आहार तथा

---

३५. व्याख्याप्रज्ञप्ति ५.९.१०-१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वनस्पति का अन्य जीवों द्वारा किया जानेवाला आहार इस विषय से सम्बन्धित चर्चा विस्तार से पायी जाती है।[३६] प्रस्तुत शोधनिबन्ध की मर्यादा ध्यान में रखते हुये वनस्पति के एकेन्द्रियत्व से जितनी चर्चा सम्बद्ध है उतनी ही यहाँ की है। वनस्पतिजीव एकेन्द्रिय हैं। फिर भी शरीरपोषण के लिए सभी शरीरधारी जीवों को वनस्पति का आहार करना आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी मर्यादा के बाहर वनस्पति का उपयोग जैन दर्शन को मंजूर नहीं है। वनस्पति 'जीव' होते हुये भी उनका आहार में प्रयोग करने का कारण सूत्रकृतांग में बताया है कि एकेन्द्रिय जीव केवल रस धातु की निष्पत्ति होती है। उसमें रक्त नहीं होता। रक्तधातु के बिना मांसधातु निष्पन्न नहीं होती। इसलिए मांस और अन्न की तुलना संगत नहीं है।[३७] सैद्धान्तिक दृष्टि से जैन शास्त्रों में कन्दमूलों को साधारण वनस्पति का दर्जा दिया है और उसका प्रत्येक जैन व्यक्ति के खानपान में निषेध भी किया है। इतना ही नहीं, दिन में जिन-जिन वनस्पतियों का प्रयोग अपने खानपान में किया है, उनकी आलोचना करने का विधान साधुसाध्वी और श्रावक-श्राविका के नित्य आवश्यककृत्य में बताया है।[३८] जैनियों की वनस्पति के प्रति विशेष संवेदनशीलता ही इससे प्रतीत होती है।

शाकाहार-मांसाहार दोनों के गुणधर्मों का विश्लेषण विज्ञान में करना है। वैज्ञानिक ग्रन्थ बोध या उपदेश देनेवाले न होने के कारण विज्ञान में किसी की सिफारिश नहीं की जाती। अलग-अलग गुणधर्म पहचान के कौनसा आहार त्याज्य है और कौनसा आहार ग्राह्य है यह सर्वथा व्यक्ति पर निर्भर है। वैज्ञानिक दृष्टि के कन्दमूल, हरी सब्जी तथा अंकुरित धान्य खाने का निषेध तो है ही नहीं बल्कि उनमें प्रोटीन्स और विटामिन्स बहुत ज्यादा मात्रा में होने का निर्देश है। जैन शास्त्रों में जिन जिन चीजों का आहार में निषेध किया है, वह वैज्ञानिक दृष्टि से निषिद्ध होने की सम्भावना नहीं है।

वैदिक ग्रन्थों में देखा जाय तो महाभारत के शान्तिपर्व में कहा है

३६. सूत्रकृतांग, आहारपरिज्ञा अध्ययन; प्रज्ञापना २८.१; १८०७, १३; भगवती ७.३.१-२

३७. सूत्रकृतांग २.६.३५ का टिप्पण

३८. आवश्यकसूत्र ४.२५ (१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि हिरन जैसे चर प्राणी तृण जैसे अचर पदार्थ खाते हैं। व्याघ्र जैसे तीक्ष्ण दाढावाले प्राणी हिरन जैसे प्राणियों को खाते हैं। विषधारी साप निर्विष दुबले सापों को निगलते हैं।[३९] 'बलशाली जीव निर्बल जीवों का आहार करते हैं।' इस प्रकार के उल्लेख वैदिक साहित्य में विपुल मात्रा में पाये जाते हैं जैसे कि 'जीवो जीवस्य जीवनम्।' मनुस्मृति में भी इसका निर्देश है-[४०]

विज्ञान में प्रचलित जो अन्नशृङ्खला है उसके संकेत वैदिक साहित्य से मिलते हैं। आहार के बारे में मनुस्मृति कहती है कि-

प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत्।
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम्॥[४१]

वनस्पति का औषध में प्रयोग :

चरक संहिता के आरम्भ में कहा है कि आयुर्वर्धन तथा रोगनिवारण[४२] इन दोनों हेतु चरक ने विविध प्रकार के कल्प, कल्क, चूर्ण, कषाय आदि औषधप्रकारों का निर्देश किया है। औषध बनाये जाने का स्पष्ट निर्देश चरकसंहिता में है यथा-वनस्पति से, मेद से, वसा से, चरबी से।[४३] चरकसंहिता ग्रन्थ के परिशिष्ट-२ में दी हुई तालिका से स्पष्ट है कि प्रस्तुत वर्गीकरण में वनस्पति द्रव्यों की ही प्रधानता है। वनस्पति के मूल, छाल, सार, गोंद, नाल (डण्ठल), स्वरस, मृदु पत्तियाँ, क्षार, दूध, फल, फूल, भस्म (राख), तैल, काँटें, पत्तियाँ, शुङ्ग (टूसा), कन्द, प्ररोह (वटजटा) इन १८ अवयवों का प्रयोग औषधि बनाने के लिए किया जाता है।[४४] वैदिकों की जीवन जीने की दृष्टि बिलकुल अलग है। वह निवृत्तिगामी या निषेधात्मक नहीं हैं। सुखी, समृद्ध, निरोगी जीवन, उल्हास और उमंगपूर्वक उत्साह से जीना यह वैदिक परम्परा का विशेष है। इसी तरह से वनस्पतियों का खुद

---

३९. महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ८९, २१-२६
४०. मनुस्मृति ५.२९
४१. मनुस्मृति ५.२८
४२. अथातो दीर्घञ्जीवितीयअध्यायं, चरकसंहिता सूत्र १
४३. चरकसंहिता ७३
४४. चरकसंहिता ७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए इस्तेमाल करने में कोई दिक्कत नहीं लगती । वैदिकों ने आयुर्वेद को पंचम वेद का दर्जा दिया है ।[४५]

जैन दर्शन के अनुसार आयुष्य बढ़ाने की बात बिलकुल गलत धारणा पर आधारित है । आयुष्य की कालावधि 'आयुष्कर्म' पर निर्भर होने के कारण उसको बढाने के लिए कोई प्राश या कल्प लेना उन्हें मंजूर नहीं है । दूसरी बात रही रोगनिवारण की । कर्मसिद्धान्त के अनुसार रोगों की वेदनायें हमारे ही कृत कर्मों का विपाक है ।[४६] उनका वेदन करने से कर्मनिर्जरा होती है । वेदना बहुत ही ज्यादा असहनीय हो तो औषधयोजना की जा सकती है । लेकिन उसके लिए वनस्पति के प्रासुक अवयव हम उपयोग में ला सकते हैं । हरेभरे जीवित वृक्ष के पत्ते, छाल, मूल आदि अवयव औषध बनाने के लिए अनुमत नहीं है ।

उपसंहार

जैन और वैदिकों के वनस्पतिविषयक विचार तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण इन तीनों का एकत्रित विचार करके निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं ।

* तीनों ने वनस्पति का समावेश जीवविभाग में किया है और वनस्पति चेतना का निर्देश प्रायः 'सुप्तचेतना' इस शब्द से ही किया है ।
* वैदिको ने आत्मा से आरम्भ करके क्रमबद्धता से वनस्पति का विकास सूचित किया है । आत्मविचार को छोडकर अगले का क्रम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मेल खाता है । जैन ग्रन्थों में पाँच प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों का उल्लेख किया गया है । वनस्पतिकायिक के जीवत्व का आधार प्रथम चार एकेन्द्रिय जीव माने हैं । लेकिन पहले चारों की एक दूसरे से उत्पत्ति का निर्देश नहीं किया है ।
* दोनों परम्पराओं में निर्दिष्ट वनस्पतियोनि-संख्या वैज्ञानिक दृष्टि से मेल खाती है ।
* दोनों मान्यताओं के अनुसार वनस्पतिसृष्टि तीनों लोकों में हैं । आज

---

४५. भारतीय संस्कृति कोश

४६. तत्त्वार्थसूत्र ८.५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध ज्ञान के आधारपर वैज्ञानिकों ने उसका अस्तित्व केवल पृथ्वी पर ही होने के संकेत दिये हैं ।

* जैन मान्यतानुसार वनस्पति का मूल जीव एक है और उसके विभिन्न अवयवों में अलग-अलग विभिन्न असंख्यात जीव होते हैं । वनस्पतिशास्त्र के अनुसार वनस्पति केवल विभिन्न अवयवों की पेशियों का एक दूसरे से जुडा हुआ संघात है । विज्ञान ने पूरे वनस्पति में व्याप्त एक जीव को मान्यता नहीं दी है । वृक्ष के किसी भी अवयव की पेशी का डीएनए देखकर हम पूरे वृक्ष का पता लगा सकते हैं । पेशियों का अलग-अलग अस्तित्व होकर भी उनमें जो साम्य है वह ध्यान में रखकर जैन ग्रन्थों में एक मूल जीव और बाकी असंख्यात जीवों की बात कही गयी होगी ।
* जैन मान्यतानुसार सभी वनस्पतियाँ सम्मूर्च्छिम हैं । इसलिए वे नपुंसकवेदी हैं । वैदिकों के अनुसार वनस्पति में लिङ्गभेद है तथा वंशवृद्धि के लिए नर-मादा-सङ्गम आवश्यक है । सपुष्प और अपुष्प वनस्पतियों के प्रजनन के बारे में जो विचार वैदिकों ने किये हैं, वे प्रायः वैज्ञानिक दृष्टि से योग्य लगते हैं ।

जैन शास्त्रकारों ने 'बीज' शब्द का नपुंसकलिङ्ग तथा बीज बोने से उसकी उत्पत्ति यह ध्यान में रखकर उन्हें नपुंसकवेदी कहा होगा । मूल, स्कन्ध आदि से उत्पन्न होनेवाली वनस्पति को देखकर उन्हें भी 'नपुंसकवेदी' कहा होगा । सपुष्प वनस्पति में होनेवाली नरमादा बीजों का मिलन उन्होंने नजरअंदाज किया होगा ।

* जैन मान्यतानुसार वनस्पतिकायिक जीव को एकही इन्द्रिय अर्थात् 'स्पर्शन' इन्द्रिय है । अभ्यासकों के अनुसार यद्यपि उनमें स्पर्शनेन्द्रिय के अलावा और चार इन्द्रियाँ तथा मन प्रत्यक्षतः द्रव्यरूप से मौजूद नहीं है तथापि चार इन्द्रियाँ तथा मन की शक्ति उसमें भावरूप से मौजूद है ।

महाभारत तथा सांख्यकारिका के अनुसार वनस्पति पाँचभौतिक है और उसमें पाँचों इन्द्रियाँ तथा मन होता है । वैज्ञानिक दृष्टि से इन्द्रियधारी जीवों की तरह वनस्पति में स्पष्ट रूप से एक भी इन्द्रिय मौजूद नहीं है । लेकिन सभी इन्द्रियों के कार्य वनस्पति अपनी त्वचा के माध्यम से ही करती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । विज्ञान के अनुसार-जो भी इन्द्रिय संवेदनायें वनस्पति में पायी जाती हैं उनके पीछे विचारशक्ति, मन अथवा मज्जासंस्था नहीं होती । वह केवल प्रतिक्षिप्त क्रियायें होतीं हैं । वनस्पति जो-जो संवेदनात्मक प्रतिक्रियायें देती है, वे सिर्फ रासायनिक या संप्रेरकात्मक प्रक्रियायें हैं । पाँच इन्द्रियधारी जीवों के साथ सपुष्प वनस्पति की तुलना की ही जाय तो हम कह सकते हैं कि फूलवाली वनस्पतियों की जननेन्द्रिय 'फूल' है । श्वासोच्छ्वास की इन्द्रिय 'पत्ता' है । उत्सर्जन क्रिया हर वनस्पति में परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग होती है । वह पत्ते, तना और मूल सभी अवयवों के द्वारा होती है।

* जैन ग्रन्थों में वनस्पति में समयज्ञान न होने का जिक्र किया है । आपाततः यह तर्क ठीक नहीं लगता । सूरजमुखी का सूरज की तरफ झुकना आदि क्रियायें वैज्ञानिक दृष्टि से सिर्फ रासायनिक संप्रेरकात्मक घटनायें हैं । इसमें जानबूझकर करने की कोई बात नहीं उठती । इसीलिए एक प्रकार से कहा भी जा सकता है कि उनमें समय का ज्ञान नहीं है । समयानुसारी वर्तन तो उनमें मौजूद है पर वह ज्ञानपूर्वक नहीं है ।

* जैन दृष्टि से शाकाहार ही सर्वथा योग्य आहार है । शाकाहार के अंदर भी बहुत सारी चीजों को ग्राह्य और त्याज्य माना है । साधु और श्रावक के लिए भी खानपान के अलग-अलग नियम हैं । विज्ञान ने शाकाहार-मांसाहार दोनों के गुणधर्म बतलाये हैं और उसकी ग्राह्यता और त्याज्यता व्यक्तिपर निर्भर रखी है । वैज्ञानिक दृष्टि से कन्दमूल, हरी सब्जियाँ तथा अंकुरित धान्य काने का निषेध तो है ही नहीं बल्कि उनमें प्रोटिन्स और विटामिन्स बहुत ज्यादा मात्रा में होने का निर्देश है । जैन शास्त्रों में जिन-जिन चीजों को आहार में निषेध किया है उनको विज्ञान से पुष्टि नहीं मिल सकती ।

वैदिक परम्परा की आहारचर्चा और आहारचर्या प्रायः वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मेल खाती है ।

* वैदिक परम्परा में आयुर्वेद को पंचम वेद का दर्जा दिया गया है । आयुर्वर्धन तथा रोगनिवारण हेतु वनस्पतियों से विविध प्रकार की औषधियाँ बनाने की प्रक्रियायें उसमें वर्णित हैं । जैन दर्शन में आयुर्वर्धन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयुष्यकर्म से निगडित है तथा अगर अत्यावश्यक हो तो रोगनिवारण सिर्फ प्रासुक औषधियों से किया जाता है ।

निष्कर्ष

उपसंहार में निर्दिष्ट मुद्दों के आधार से हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि इन्द्रियों की दृष्टि से जैन और वैदिक परम्परा में किया हुआ वनस्पति विचार प्राय: आज के वनस्पतिशास्त्रविषयक तथ्यों से मिलताजुलता है । दोनों परम्पराओं के विचार लगभग ईसवीपूर्व काल के हैं । केवल चिन्तन और निरीक्षण के आधार पर उन्होंने किया हुआ विश्लेषण काफी सराहनीय है।

जैन परम्परा वनस्पतिसृष्टिकी ओर हिंसा-अहिंसा की दृष्टि केन्द्रस्थान में रखते हुये देखती है । इस परम्परा ने वनस्पतियों को 'एकेन्द्रिय' कहा है तथापि एकेन्द्रिय होना उनके स्वतन्त्र जीव होने में बाधारूप नहीं है । इन्द्रियों की पर्याप्तियों को देखकर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीव हैं तथापि जीवत्वरूप से सभी में समानता है । एकेन्द्रिय जीव कम दर्जावाला और पंचेन्द्रिय मनुष्य श्रेष्ठ दर्जावाला नहीं है । वनस्पतिकायिक जीव मनुष्य रूप में आ सकता है और मनुष्य भी वृक्षरूप में परिणत हो सकता है । यद्यपि वनस्पति की चेतना सुप्त है तथापि मनुष्य को बिलकुल हक नहीं है कि वह उनको दु:ख पहुँचाये । आचारांग और सूत्रकृतांग के उपर्युक्त सन्दर्भ इस पर अच्छा प्रकाश डालते हैं । उत्तरोत्तर प्राकृत साहित्य में वनस्पतिविषयक चर्चा की गहराई बढती गई । वनस्पति का आहार से निकट सम्बन्ध होने के कारण आहारचर्चा और खासकर निषेधचर्चा बढती गयी । श्रावकों के लिए 'वणकम्म' तथा 'इंगालकम्म' आदि वनस्पतिसम्बन्धिव्यवसाय निषिद्ध माने गये। चित्रकारी में भि उन्होंने वनस्पतिजन्य रंगों का उपयोग नहीं किया । आयुर्वेद में वनस्पति को काँट कर, कूटकर, घोलकर, उबालकर औषध बनाये जाते हैं । इसलिए इस शाखा का विस्तार और प्रचार जैन परम्परा में नहीं हुआ । परिणाम स्वरूप जैनियों ने वनस्पतिसृष्टि को हानी तो नहीं पहुँचायी लेकिन साथसाथ वृक्षारोपण, वृक्षसंवर्धन, बगीचे बनाना आदि क्रियाओं में भी वे सहभागी नहीं हुये । वनस्पति की ओर उन्होंने भावनात्मक और नैतिकता के दृष्टिकोण से देखा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैदिकोंने हमेशा उल्हास, उमंग, आरोग्य और समृद्ध मानवी जीवन को केन्द्रस्थान में रखकर सारी शास्त्रशाखाओं का निर्माण किया। वनस्पतिशास्त्र का भी सूक्ष्मता से विचार किया। उससे निष्पन्न होने वाली आयुर्वेद तथा वननिर्माण, उद्याननिर्माण इन शास्त्र तथा कलाओं की भी वृद्धि की। उन्होंने वृक्षों को पंचेन्द्रिय कहा, लेकिन अहिंसा की दृष्टि रखते हुये उनको दैनंदिन व्यवहार से दूर नहीं किया बल्कि वनस्पति का यथोचित इस्तेमाल ही किया। दैनंदिन व्यावहारिक जीवन में मनुष्य को महत्त्वपूर्ण और वनस्पति को निम्नस्तरीय मानकर आयुर्वर्धन तथा रोगनिवारण के लिए उनका खूब उपयोग किया। ये सब करे हुये वृक्षों को पीडा देने की भावना उनमें भी नहीं थी। बल्कि अनेक वृक्षों की ओर पूजनीयता की दृष्टि को देखकर उनका सम्बन्ध अनेक व्रतों से भी स्थापित किया। वृक्ष के फल-फूल-पत्ते तोडने में उनके मन में हिंसा की तनिक भी भावना नहीं थी। बल्कि 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' इस रूप में ईश्वर को अर्पण करने की भी बुद्धि थी।

जैन (निर्ग्रन्थ परम्परा) और वैदिक परम्परा इन दोनों के मूलाधार जीवनदृष्टि और तत्त्वज्ञान में इतना मौलिक भेद है कि कोई भी सृष्ट वस्तु की तरफ देखने का उनका परिप्रेक्ष्य अलग-अलग ही होता है। जैन परिभाषा में कहें तो वैदिक परम्परा वनस्पति की ओर व्यवहारनय से देखते हैं तो जैन निश्चयनय देखते हैं। वनस्पति के बारे में वैदिकों का वर्तन मानवकेन्द्री है तो जैनियों का मानवतावादी है।

विज्ञान सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

(१) Champion, Harry G. and Seth S. K. - A revised survey of forest types of India.
(2) P.S. Verma, K. K. Agarwal-Principles of Ecology - 1992.
(3) M. C. Das - Fundamentals of Ecology.
(4) Taxonomy of Augisperms - V. N. Naik.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org